THE ECONOMIC TIMES

Date: 12-02-26

Labelling AI is Being Smart, Not Overkill

Making deepfakes ethical, not disappear

ET Editorial

New rules on labelling AI-generated content that come into force later this month are a timely regulatory intervention. Harmful deepfakes have raised concern across the board, and the requirement in modified regulations for IT intermediaries that all content created synthetically be identified as such places the compliance burden on digital platforms. Takedown timelines have been squeezed, in some cases to hours instead of days, which is to limit damage from malicious content.

Platforms are required to scrub content to check for mala fide AI use, and must introduce tracers for content creators and tools used. They need to periodically warn users about penalties for misusing AI in content generation. The new rules are not beyond technical and operational capabilities of platforms.

Too much? No. Segregating content by source provides an effective mechanism to make AI responsible. It permits business models that rely on synthetic information, while upholding informed consumer choice. Two sets of gatekeeping — at creator level through declaration, and at platform level through identification — should screen most AI content for misuse. In the absence of explicit protection of personality rights, guard rails being set up should be adequate. Quicker takedowns are an extra layer of protection for content that manages to get past other measures.

The time to label AI content is before synthetic content becomes indistinguishable from that created by humans. The tech has developed pretty effective screening systems. These should be implemented vigorously and uniformly, irrespective of tools being employed or platforms used for distribution. Since synthetic and natural content are to be treated alike, apart from the need for labelling, there is no additional embedded risk to freedom of expression in the new regulations. The rules will bring India's oversight of AI content in line with what is available in the EU and China. This is a positive factor for harmonisation of efforts to keep AI ethical.

दैनिक भास्कर

Date: 12-02-26

नियमों के जंजाल में उलझी है हमारी आंत्रप्रेन्योरशिप

संपादकीय

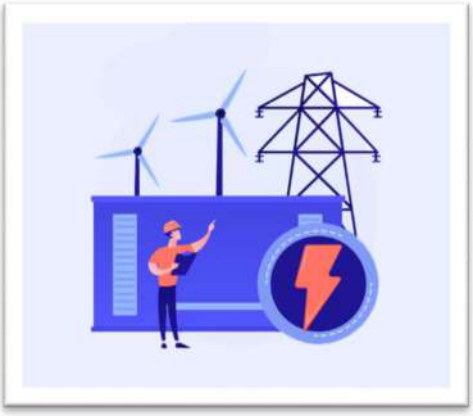

संसद में सरकार ने बताया कि अंतर-राज्यीय ट्रांसमिशन सिस्टम के तहत प्रस्तावित प्रोजेक्ट्स में से जिन 25 पर जमीन अधिग्रहण के अभाव में काम रुक गया है, उनमें से 24 रिन्यूएबल एनर्जी प्रोजेक्ट्स से सम्बंधित हैं। रुकने का कारण ट्रांसमिशन लाइन्स के नीचे की जमीन के अधिग्रहण में विलम्ब था यानी रिन्यूएबल एनर्जी की उपलब्धता के बावजूद लाइन्स न होने से ट्रांसमिशन नहीं हुआ। भारत दुनिया का सबसे ज्यादा रेगुलेशन वाला देश है। एक कंपनी को 1536 कानूनों, 6618 स्टेटमेंट्स, 69233 अनुपालनों से गुजरना होता है। एक दवा कंपनी को 998 नियमों का पालन करना होता है, जिनमें से 49% वे हैं जिनमें जेल की सजा है। इन सबके बावजूद कफ सिरप कांड में दर्जनों मौतें हुईं। कानून तोड़कर नशे के लिए कफ सिरप बेचने वालों और नकली दवा बनाने वालों का अंतरराज्यीय गिरोह वर्षों से यह काम कर रहा है। यानी ईमानदार व्यापारियों/उद्यमियों को कानून के अनुपालन में भारी राशि और समय खर्च करना पड़ रहा है और बेईमान सरकारी तंत्र को मालामाल कर रहे हैं। भारत ने व्यापक ट्रेड डील्स की हैं। इनके तहत मैन्युफैक्चरिंग को भारी उछाल देना सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। आसिआन, जीसीसी, साफ्टा, इफ्टा, मर्कोसुर में भारत का सामान जाता है । अगर भारत में चीन अपना बल्ब, मूर्तियां, सामान्य टोपियां तक बेच सकता है तो समस्या उद्यमिता में नहीं, उद्यमिता के माहौल के अभाव की है। अगर अनुबंधों फलीभूत करना है तो सरकार उसके लिए माहौल भी दे।

दैनिक जागरण

Date: 12-02-26

मनमानी रोकने वाले नए नियम

एस. कृष्ण, (लेखक भारत सरकार के इलेक्ट्रानिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के सचिव हैं)

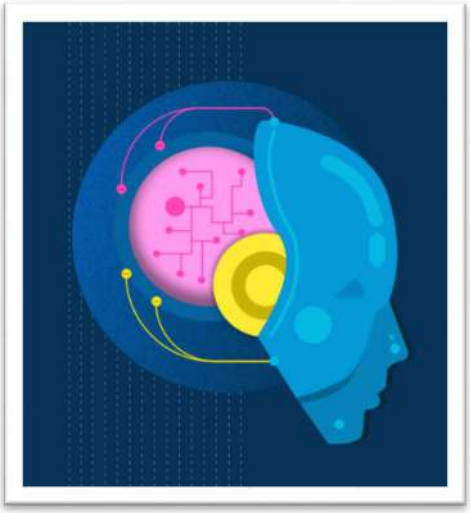

भारत का डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा है। मशीनी कौशल (एआइ) में हुई प्रगति, खासकर आडियो, वीडियो और आडियो-वीडियो कंटेंट को बनाने और बदलने की तकनीक ने सूचना के सृजन, उपभोग और विश्वास के तरीके को मौलिक रूप से बदल दिया है। जहां ये तकनीक अभिव्यक्ति, रचनात्मकता और लोगों तक पहुंच को बढ़ाती हैं, वहीं ये ऐसे नए खतरे भी पैदा करती हैं जो सीधे तौर पर व्यक्ति की गरिमा, सामाजिक सौहार्द और संवैधानिक मूल्यों से जुड़े हुए हैं। कृत्रिम रूप से बनाई गई जानकारी से पैदा होने वाली खास चुनौतियों को समझते हुए भारत सरकार ने डिजिटल मध्यस्थों (डिजिटल इंटरमीडियरी) से जुड़े कानून और नीतिगत ढांचे को और मजबूत किया है।

सूचना प्रौद्योगिकी (इंटरमीडियरी गाइडलाइंस और डिजिटल मीडिया एथिक्स कोड) नियम, 2021 में किए गए हालिया संशोधन और नवंबर 2025 में इंडिया एआइ मिशन के तहत जारी भारत की एआइ गवर्नेंस गाइडलाइंस, 2025-दोनों को साथ पढ़ने पर सरकार का एक संतुलित और स्पष्ट दृष्टिकोण सामने आता है। इसका मतलब यह है कि वास्तविक नुकसान से निपटने के लिए कानूनी रूप से बाध्यकारी जिम्मेदारियां तय की गई हैं और साथ ही जिम्मेदार तरीके से एआइ को अपनाने के लिए नीतिगत सिद्धांत भी तय किए गए हैं।

हितधारकों (स्टेकहोल्डर्स) से व्यापक विचार-विमर्श के बाद तैयार किए गए ये सभी नियम और दिशानिर्देश मिलकर सरकार की एक साफ मंशा दिखाते हैं-तकनीक का विकास ऐसा हो, जो पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिक की गरिमा को बनाए रखने वाले ढांचे के भीतर ही आगे बढ़े। संशोधित इंटरमीडियरी नियमों में पहली बार कृत्रिम रूप से बनाई गई जानकारी की एक साफ और व्यावहारिक परिभाषा दी गई है। इसमें वह कंटेंट शामिल है जो इस तरह बनाया या बदला गया हो कि वह असली जैसा लगे या हकीकत से अलग पहचान में न आए, लेकिन इसमें सामान्य और ईमानदार कामों को साफ तौर पर बाहर रखा गया है-जैसे तकनीकी एडिटिंग, दिव्यांगों की सुविधा के लिए किए गए बदलाव, पढ़ाई या शोध से जुड़ी सामग्री और वैध रचनात्मक उपयोग।

इससे यह सुनिश्चित होता है कि डिजिटल नुकसान के नए तरीकों से मौजूदा कानूनी ढांचे के भीतर ही निपटा जाए, न कि उसे अनौपचारिक या प्लेटफार्म की अपनी माडरेशन व्यवस्था पर छोड़ दिया जाए। इतना ही महत्वपूर्ण यह स्पष्टीकरण है कि मध्यस्थों द्वारा स्वचालित उपकरणों या अन्य उचित तकनीकी उपायों के माध्यम से सद्भावनापूर्वक की गई कार्रवाइयां वैधानिक सुरक्षा को कमजोर नहीं करती हैं। इससे जवाबदेही बनाए रखते हुए अनुपालन को बढ़ावा देने वाला परिवेश मजबूत होता है।

संशोधित ढांचे में सबसे बड़ा और अहम बदलाव यह है कि अब सिर्फ नुकसान होने के बाद कार्रवाई करने के बजाय, पहले से ही रोकथाम पर जोर दिया गया है। जो डिजिटल प्लेटफार्म कृत्रिम रूप से बनाई गई जानकारी को बनाने या फैलाने में मदद करते हैं, उन्हें ऐसे तकनीकी उपाय अपनाने होंगे, ताकि गैर-कानूनी कंटेंट के बनते समय या फैलते समय ही रोका जा सके। अगर कृत्रिम रूप से बनाया गया कंटेंट कानूनी है तो उस पर साफ और स्पष्ट लेबल लगाना अनिवार्य होगा। साथ ही, तकनीकी रूप से संभव होने पर उसके साथ स्थायी मेटाडाटा या स्रोत पहचान से जुड़ी व्यवस्था भी करनी होगी, ताकि यह पता चल सके कि वह कंटेंट कहां से आया है।

इन लेबल या पहचान से जुड़े चिह्नों को हटाना, बदलना या छिपाना साफ तौर पर प्रतिबंधित होगा। इसमें केवल नुकसान हो जाने के बाद कंटेंट हटाने पर भरोसा नहीं किया गया है, बल्कि पारदर्शिता को नागरिक की गरिमा और भरोसे की सुरक्षा के रूप में देखा गया है। अब नागरिकों को सिर्फ शिकायत करने का अधिकार ही नहीं मिलेगा, बल्कि वे उसी समय यह पहचान भी कर सकेंगे कि कोई कंटेंट असली है या नहीं। यह नागरिकों के 'जानने के अधिकार' को मान्यता देने जैसा है। अब डिजिटल प्लेटफार्म को समय-समय पर और साफ भाषा में यूजर्स को उनके अधिकार, जिम्मेदारियां और नियम न मानने पर होने वाले परिणामों के बारे में बताते रहना होगा।

बड़े और प्रभावशाली इंटरनेट मीडिया प्लेटफार्म के लिए नियमों में अतिरिक्त जिम्मेदारियां तय की गई हैं, जो उनके आकार और प्रभाव के हिसाब से हैं। अगर कोई प्लेटफार्म नियमों का पालन नहीं करता है, तो उसे चूक माना जाएगा और

उस पर कानूनी कार्रवाई हो सकती है। जिन प्लेटफार्म का समाज पर ज्यादा और व्यापक असर है, उन पर शासन और निगरानी की जिम्मेदारी भी ज्यादा होगी।

कानूनी रूप से लागू किए जा सकने वाले इन नियमों के साथ-साथ, इंडिया एआइ गवर्नेंस गाइडलाइंस, 2025 एआइ को जिम्मेदार, सुरक्षित और सभी को साथ लेकर अपनाने के लिए एक नीतिगत ढांचा बताती हैं। ये गाइडलाइंस आइटी एक्ट या इंटरमीडियरी नियमों की कानूनी जिम्मेदारियों को खत्म नहीं करतीं, बल्कि ये डेवलपर्स, एआइ सिस्टम लागू करने वालों और संस्थानों को दिशा देने का काम करती हैं। फिलहाल जो ढांचा बनाया गया है, वह संतुलित नियमों और नीतिगत दिशानिर्देशों पर टिका है, पर यदि जनहित में जरूरत पड़ी, तो संसद के पास बदलती तकनीकी परिस्थितियों के अनुसार कानून बनाने का पूरा अधिकार बना हुआ है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 12-02-26

बोलने ही नहीं, सोचने की भी आजादी हो

मनोज कुमार झा, (राज्य सभा सदस्य)

इन दिनों हमारे सार्वजनिक जीवन में एक अभूतपूर्व अपेक्षा का पोषण हो चला है कि राजनीतिक विचार उपनामों से तय होने चाहिए। नागरिकता को गौण मान लिया जाता है और राजनीतिक विवेक को पारिवारिक पहचान से विरासत में मिला हुआ समझा जाता है। इस दृष्टि में 'उपनाम' एक पूर्व निर्धारित पटकथा बन जाता है जो उससे हटता है, उसे स्वतंत्र सोच नहीं, बल्कि विश्वासघात के रूप में देखा जाता है। ऐसे में, तर्कपूर्ण असहमति नहीं, बल्कि अपमान सामने आता है। यह सिर्फ सामाजिक समस्या नहीं है; यह सांविधानिक स्वायत्तता के प्रति गहरे असहज भाव को दर्शाती है। लोगों को सबसे अधिक विचलित यह बात नहीं करती कि कोई असहमत है, बल्कि यह करती है कि कोई प्राथमिक राजनीतिक कसौटी के रूप में संविधान को चुनता है, न कि वंश या पहचान को ।

भारत की सांविधानिक कल्पना इसी तर्क को तोड़ने के लिए गढ़ी गई थी। सविधान नागरिकों को उनके उपनाम, कुल या विरासत में मिली निष्ठाओं से नहीं पहचानता, वह समान नैतिक संस्था की भाषा बोलता है। वह यह मानकर चलता है कि लोग उस सामाजिक पहचान से स्वतंत्र होकर नैतिक चिंतन और राजनीतिक निर्णय लेने में सक्षम हैं, जिसमें वे जन्म लेते हैं। इस स्वायत्तता को नकारना, सांविधानिक नागरिकता की आत्मा को रिक्त कर देना है। फिर भी, समकालीन विमर्श में पहचान को अनुशासनात्मक हथियारकीतरह इस्तेमाल किया जा रहा है।

इन दिनों राजनीतिक असहमति को सामुदायिक कर्तव्य से विचलन के रूप में पेश किया जाता है। तर्क की जगह संकेत और आरोप ले लेते हैं; समझाने की जगह निगरानी आ जाती है। अवयह नहीं पूछा जाता कि आप क्या सोचते हैं या क्यों, बल्कि यह पूछा जाता है कि आप किसका प्रतिनिधित्व करने के लिए बाध्य हैं ? यह एक गहरी असांविधानिक

प्रवृत्ति है, जो नागरिकों को कल्पित बहुसंख्यकों का प्रतिनिधि बना देती है और राजनीति को विचारों की प्रतिस्पर्द्धा के बजाय निष्ठाओं की जनगणना में बदल देती है।

सांविधानिक लोकतंत्र एक अतिव्यापी सर्वसम्मति पर निर्भर करता है अर्थात विभिन्न सामाजिकपृष्ठभूमि के नागरिकों का न्याय, स्वतंत्रता और समानता जैसे साझा मूल्यों पर एकत्र होना यह तभी संभव है, जब सांविधानिक मूल्यों को जाति, कुल या समुदाय जैसी विरासतगत निष्ठाओं से ऊपर रखा जाए। जब राजनीतिक विवेक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उपनामों से आज्ञाकारी ढंग से निकले तब नागरिकता जन्म का संयोग बनकर रह जाती है और नैतिक स्वायत्तता चुपचाप समर्पित हो जाती है।

इस तरह के संकीर्णतावाद का खतरा केवल सामाजिक विभाजन नहीं, बल्कि सांविधानिक क्षरण है। जैसा कि मार्था नुसबाम (अमेरिकी दार्शनिक) ने कहा है, जो निष्ठाएं केवल निकट और परिचित तक सीमित रह जाती हैं, वे अक्सर 'नैतिक रूप सेनिष्क्रिय, यहां तक कि हानिकारक हो जाती हैं, जबवे दूरस्थदूसरों की समान गरिमा को पहचानने से रोकती हैं। संविधान की रूपांतरकारी शक्तिइसी आग्रह में निहित है कि हम अपने दायरे को संकुचित नहीं, बल्कि विस्तृत करें। वह अपने नागरिकों से अपेक्षा करता है कि वे स्वयं को विरासतगत पहचान के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, बल्कि समाननैतिक दर्जे के धारक के रूप में देखें। एक सशक्त गणराज्य के लिए सबसे बड़े संभव 'हम' का निर्माण आवश्यक है, जो रक्त या जन्म से नहीं, बल्कि न्याय, गरिमा और स्वतंत्रता के साझा संकल्प से बंधा हो ।

एक और बड़ा खतरा है जब पहचान राजनीतिक वैधता का मापदंड बन जाती है, तबसांविधानिक विवेक विस्थापित हो जाता है। अधिकारों की रक्षा इसलिए नहीं की जाती कि वे न्यायसंगत हैं, बल्कि इसलिए कि वे समूह - हित से मेल खाते हैं। अन्याय को तब तक सहन कर लिया जाता है, जबतक वह' अपने' लोगोंको लाभ पहुंचाता हो। इसी तरह सांविधानिक नैतिकता नाटकीय टूटनसे नहीं, बल्कि रोजमर्रा के सुविधाजनक समझौतों से क्षीण होती है। एक सांविधानिक लोकतंत्र में नैतिक क्षितिज का विस्तार सभी नागरिकों तक होना चाहिए, सिर्फ उन्हीं तक नहीं, जो हमारी जाति, हमारा धर्म, क्षेत्र या उपनाम साझा करते हों।

यदि मुक्ति की राजनीति को नारे से आगे कुछ अर्थ रखना है, तो उसे इस फिसलनका प्रतिरोध करना होगा। वह इस मान्यता पर टिक नहीं सकती कि विरासतगत निष्ठा नैतिक तर्क से ऊपर है। वह जीवित ही नहीं रह सकती, यदि नागरिकों को उनकी सौंपी गई पहचान के विरुद्ध सोचनेका अधिकार ही न दिया जाए। मुक्ति की शुरुआत सत्ता से, परंपरा से और आवश्यकता पड़ने पर अपने ही समुदाय से असहमति के साहस से होती है, जब वे सांविधानिक नैतिकता के विरुद्ध खड़े हों।

पहचान स्वभावतः बहुल है। जैसा कि अमर्त्य सेन अपनी पुस्तक आइडेंटिटी ऐडवॉयलेंस में कहते हैं, हम एक साथ कई पहचान में रहते हैं- पेशेवर, भाषायी, क्षेत्रीय, वैचारिक, नैतिक और संदर्भ के अनुसार उनकी प्रासंगिकता बदलती रहती है। मैं विश्वविद्यालय में एक शिक्षक हूं, अकादमिक मंचों पर शोधकर्ता, राजनीतिक बहसों में एक नागरिक और हां, एक विशेष समुदायमें जन्मा व्यक्ति भी । इसलिए कोई एक पहचान यह तय नहीं कर सकती कि मैं क्या सोचूं ? यह आग्रह कि विरासतगतसमूह-परिचय ही हर संदर्भ में निर्णायक हो, वही है, जिसे अमर्त्य सेन 'एकल पहचान' की खतरनाक अवधारणा कहते हैं। यह ऐसा सरलीकरण है, जो मानवीय जटिलता को नकार देता है। यह मान लेता है कि जाति या धार्मिक पृष्ठभूमि, आरक्षण, धर्मनिरपेक्षता या आर्थिकनीति पर मेरी राय पहले से तय कर देती है। यह बौद्धिक दरिद्रता

तो है ही, नैतिकरूप से दमनकारी भी है। नागरिकता की मांग है कि हम इस समतलीकरण से इनकार करें और अपने राजनीतिक निर्णयों को वेश नहीं, विवेक व संदर्भ के अधीन रखें।

भारत जैसे विविध और असमान गणराज्यमेंपहचान की निश्चितताओं में शरण लेना समझ में आता है, किंतु उस प्रलोभन के आगे झुकने की कीमत बहुत भारी है। यह नागरिकता को क्षीण करता है, राजनीतिक कल्पना को समतल करता है और सैद्धांतिक असहमति के द्वार बंद कर देता है। यदि हम सचमुच गणराज्य की रक्षा को लेकर गंभीर हैं, तो हमें केवल बोलने के अधिकार की नहीं, बल्कि सोचने के अधिकार की भी रक्षा करनी होगी - स्वतंत्र रूप से, स्वायत्त रूप से औरसांविधानिक रूप से। इससे कुछ भी कम लोकतंत्र को वंश की पहचान में बदल देता है। इसी भविष्यको रोकने के लिए संविधान लिखा गया था।